600 Cover Green
Ink Red

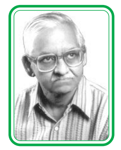
(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ
M.Sc., Ph.D.

वर्ष-22 नवम्बर-2012 अंक-11

प्रकाशो मे निजं रूप नातिरिक्तौऽस्म्यहं ततः।
यदा प्रकाशते विश्वं तदाऽहंभस एवं हि॥

प्रकाश मेरा अपना स्वरूप है। मैं उससे पृथक् नहीं हूं। जब विश्व प्रकाशित होता है, तब वह मेरे ही प्रकाश से प्रकाशित होता है। (अष्टावक्र गीता 2.8)

दीपावली के उपलक्ष्य में समस्त साधकों को ध्यान द्वारा
अन्दर के दीप प्रज्ज्वलित करते हुए अपना बाहरी
जीवन प्रकाशमय बनाने हेतु शुभ कामनायें।

प्रकाशक
ध्यान सत्संग सभा
हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346

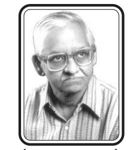
(1936-2009)

अखण्ड ज्ञान

✍ डॉ० शम्भू नाथ

अखण्ड ज्ञान कैसे उभरता है? यह जीवन अनन्त पहलुओं में बंटा है; और हर पहलू का अपना एक ज्ञान है। कोई भी क्षेत्र ले लें: अंग्रेजी भाषा हो या हिन्दी, व्यापार हो या नौकरी; किसी भी क्षेत्र का ज्ञान केवल उस क्षेत्र में मन के विचरण के आधार पर, बुद्धि में पैदा होता है। बुद्धि द्वारा ही हम अलग-अलग क्षेत्र का ज्ञान पाते हैं।

> **लेकिन बुद्धि में अलग-अलग क्षेत्र से सम्बन्धित ज्ञान की पर्तें, केवल मन के विचरण के आधार पर ही खुलती हैं। जिस क्षेत्र में मन विचरण करता है; केवल उसी क्षेत्र का ज्ञान बुद्धि को हो जाता है।**

यदि कोई कहे कि किसी को किसी खास विषय का ज्ञान है : तो निश्चय ही उस व्यक्ति ने उस खास विषय के बारे में काफी दिनों तक कुछ किताबें पढ़ी होंगी, कुछ प्रयोग किये होंगे, कुछ मनन किया होगा; और जब यह सब होता रहा होगा: उस समय, जिसके पास जैसी बुद्धि रहती है; उसी बुद्धि की सहायता से मन उस विषय के अलग-अलग क्षेत्रों में विचरण करता रहता है। किसी एक जगह पर रुका नहीं रहता; और इस विचरण के आधार पर ही बुद्धि का विकास होता रहता है। बुद्धि शुरू में जिस स्तर की रहती है: उससे कुछ ऊंचे स्तर की हो जाती है। अंग्रेजी में ज्ञान को (Knowledge) कहते हैं। Knowledge; know शब्द से बना है। जिसका अर्थ है जानना। मन यदि किसी चीज को जानना चाहता है: तो उससे सम्पर्क करना पड़ता है। बाहर के स्थूल स्तर की चीजों को जानने के लिए; मन पाँच ज्ञानेन्द्रियों की मदद लेता है। क्योंकि बाहर का जगत स्थूल है; और ज्ञान मन को चाहिए, जो अपने आप में बहुत सूक्ष्म है। वह ज्ञानेन्द्रियों की सहायता लेता है। जो कि मन से ज्यादा

स्थूल हैं; लेकिन बाहर के जगत से सूक्ष्म हैं।

स्थूलता और सूक्ष्मता की दृष्टि से ज्ञानेन्द्रियों का स्तर मन और बाहर के जगत के बीच का होता है। इसीलिए ये ज्ञान इन्द्रियां माध्यम का काम करने लग जाती हैं।

अखण्ड ज्ञान, जैसा की सन्धि विच्छेद से पता चलता है: अखण्ड का ज्ञान है। दूसरे शब्दों में ईश्वरीय तत्व का ज्ञान है। ईश्वरीय तत्व का ही दूसरा नाम अखण्ड है। क्योंकि खण्डन करके हम केवल सूक्ष्म और सूक्ष्मतम पर्तों में ही प्रवेश करते हैं। जैसे परमाणु हमेशा अणुओं के खंडन के बाद ही मिलता है: परमाणुओं के विभाजन से प्रोटान और एलेक्ट्रान मिलते हैं। बौद्धिक स्तर पर यह समझना बहुत आसान है: कि इस विभाजन का अन्त किसी न किसी स्तर पर जरूर हुआ होगा। यही ईश्वरीय तत्व का स्तर है।

यदि विभाजन द्वारा हम केवल सूक्ष्म स्तरों में प्रवेश करते हैं: तो निश्चय ही जैसा हमने ऊपर देखा; ईश्वरीय तत्व सूक्ष्मता की चरम सीमा होनी चाहिए। यह हर तत्व के हर कण का सूक्ष्मतर स्तर है।

अखण्ड ज्ञान का अर्थ केवल यह है: कि मन को उस स्तर का ज्ञान चाहिए; जिसका कि आगे विभाजन सम्भव नहीं है। Relative field; अर्थात् बाहरी दुनियां की सबसे सूक्ष्म चीज मन (Conscious level of the mind) है। यह ईश्वरीय तत्व या ईश्वरीय शक्ति, जिसका कि भण्डार आत्मा है: यदि उभर कर हमारी चेतना के चेत स्तर (मन) तक आ जाए; तो मन और ईश्वरीय तत्व की सूक्ष्मता में, या तो कोई अन्तर नहीं होगा, और यदि होगा भी; तो वह इतना कम होगा कि ईश्वरीय तत्व को अनुभव करने के लिए मन को किसी दूसरे माध्यम की जरूरत नहीं

पड़ेगी। जैसा हम ऊपर देख चुके हैं: हर वस्तु को जानने के लिए मन को उससे सम्पर्क करना पड़ता है; और इस सम्पर्क में ही उस वस्तु का ज्ञान है।

ईश्वरीय तत्व का ज्ञान, मन ईश्वरीय तत्व को स्वयं सम्पर्क करके प्राप्त करता है। ईश्वरीय तत्व का ही दूसरा नाम ब्रह्म तत्व है। यदि इस ब्रह्म या ईश्वरीय तत्व या अखण्ड तत्व का ज्ञान चाहिए: तो मन को बार-बार ब्रह्म के क्षेत्र में विचरण कर; उससे अपना सम्पर्क धीरे-धीरे बढ़ाना होग; और ईश्वर के ध्यान (Meditation) के समय यही होता है।

शास्त्रों में इसी को ब्रह्मचर्य का पालन कहा गया। ब्रह्मचर्य का शाब्दिक अर्थ है: ब्रह्म में विचरण। ईश्वर का ध्यान सीखते समय हम लोग देख चुके हैं; कि ध्यान के समय मन बार-बार अन्दर आता है और बाहर जाता है। जब अन्दर आता है; तो मन ईश्वरीय तत्व को अपने में पिरोता है।

जैसे जब कपड़ा रंग की बाल्टी में डाला जाता है: तो रंग को सोख लेता है। अब यह समझना मुश्किल नहीं होना चाहिए; कि ज्यों-ज्यों मन, ईश्वरीय तत्व को अपने में पिरोता है: मन और ईश्वरीय तत्व का सम्बन्ध गहरा होता चला जाता है।

जब मन आन्तरिक जगत में विचरण करता है, उस समय बुद्धि का सम्बन्ध मन से टूट जाता है। लेकिन जैसे ही मन अन्दर की दुनियां में विचरण करके अपने चेत स्तर पर वापस आता है: वह बुद्धि से जुड़ जाता है। क्योंकि बाहर की चेतना वापस आने के बाद पल भर के लिए भी मन, बुद्धि से अलग नहीं रह सकते। ब्रह्म में विचरण करते समय, मन जिस ईश्वरीय तत्व को अपने में पिरो लेता है, या कहूं कि मन पर अन्दर की दुनियां में विचरण करने से जो Impressions अथवा छाप पड़ते हैं:

वे ज्ञान के रूप में, बुद्धि के उन सूक्ष्म पर्तों में प्रवेश कर जाते हैं; जिनमें स्थूल स्तर के ज्ञान की सम्भावना ही नहीं है।

हम देख चुके हैं कि ज्ञान केवल मन के विचरण के आधार पर ही होता है। विचरण चाहे जिस क्षेत्र में हो: उसी क्षेत्र का ज्ञान हो जाता है।

उस क्षेत्र का होश हो जाना, या ज्ञान हो जाना, एक ही बात है। दूसरे शब्दों में ज्यों-ज्यों ईश्वरीय तत्व का ज्ञान होने लगता है; त्यों-त्यों अन्दर की दुनियां को अनुभव करने की शक्ति भी पैदा होने लगती है। यह अनुभव की शक्ति: मन की ही शक्ति होती है। इसी बात को ध्यान की विधि सीखते समय हम लोगों ने दूसरी तरह से समझाया।

हम लोगों ने देखा था कि ईश्वरीय शक्ति जब तक आत्मा के क्षेत्र में रहती है: वह निर्गुण और निराकार रहती है। लेकिन जब उभर कर चेतना के चेत स्तर तक पहुंचती है: तब वह सच्चिदानन्द स्वरूप हो जाती है। उसमें सत् चित् और आनन्द के गुण होते हैं।

इसलिए यदि ध्यान के अभ्यास के समय मन बार-बार ईश्वरीय तत्व को अपने में पिरोयेगा; तो मन के अन्दर सच्चिदानन्द के गुण उभर आएंगे। और जैसा हमने ऊपर देखा: ध्यान के अभ्यास द्वारा धीरे-धीरे मन में अन्दर की दुनियां को अनुभव करने की शक्ति पैदा हो जाती है। ईश्वरीय तत्व से निकले हुए आनन्द को मन धीरे-धीरे अपने अन्त:करण के सुख (Bliss) के रूप में अनुभव करने लगता है। अनुभव की इस शक्ति को ही होश या जाग (consciousness) कहते हैं। इसीलिए ध्यान की विधि सीखते समय यह बताया गया था; कि ईश्वरीय तत्व का दूसरा गुण जिसे चित् कहते हैं: होश या जाग (consciousness) के रूप में जीवन

में उभर आता है। यह consciousness जो कि अनुभव की शक्ति है: सारे ज्ञान का आधार है। अब यह समझाना आसान है; कि ईश्वरीय तत्व का ज्ञान (दूसरे शब्दों में अखण्ड का ज्ञान) तभी होगा: जब मन नियमित अभ्यास द्वारा; ईश्वरीय तत्व के गुण को उभारता ही चला जाए।

अखण्ड ज्ञान का अर्थ है: अखण्ड का ज्ञान। हमने ऊपर देखा कि यह ध्यान द्वारा कैसे उभरता है? लेकिन ध्यान द्वारा जब ईश्वरीय तत्व के गुण मन में उभरेंगे: तो सत् का गुण भी उभरेगा। ईश्वरीय तत्व का गुण सत् ही; अखण्डता के नाम से प्रचलित है। और अखण्डता का अर्थ बहुत ही विस्तार से हम लोगों ने उस समय समझा: जब अखण्ड आनन्द की बात कर रहे थे। जैसा हमने ऊपर देखा; अखण्ड का अर्थ है: जिसका खंड न हो सके। लेकिन अखण्डता का अर्थ है: आगे बढ़कर पीछे न हटना। दूसरे शब्दों में धीरे-धीरे आगे ही बढ़ते चले जाना।

जहां पर भी ईश्वरीय तत्व का प्रवाह अन्दर से बाहर की ओर होता ही चला जाएगा: वहां पर जीवन के सारे पहलुओं में धीरे-धीरे केवल सुख की शक्ति बढ़ेगी और दु:ख की शक्ति कम होती ही चली जाएगी।

हम लोग पहले भी देख चुके हैं; कि आत्मा एक तरह की शक्ति का भण्डार है: जो कि सभी प्राणियों के अन्दर के क्षेत्र में है; और बाहरी क्षेत्र को संवारने की ताकत रखता है। इसी बात को अगर हम दूसरे शब्दों में इस तरह कह दें: कि बाहरी जीवन को संवारने की शक्ति केवल ईश्वरीय तत्व के ज्ञान में है: तो शायद गलत कुछ भी नहीं है।

आत्मा ईश्वरीय तत्व का भंडार है, इसलिए आत्म ज्ञान तो केवल उसी को है: जिसे ईश्वरीय तत्व का ज्ञान है।

ईश्वरीय तत्व का ही दिया हुआ यह जीवन है। इसीलिए कहते हैं कि

जीवन के सुख और दु:ख का रहस्य आत्म-ज्ञान में है। बाहर की दुनियां के चाहे जिस क्षेत्र में व्यस्त रहो; व्यस्त रहने का एकमात्र ध्येय: केवल जीवन का सुख है। और जीवन के सुख का ज्ञान केवल आत्मज्ञान में है। इसीलिए शास्त्रों में लिखा है: कि आत्मज्ञान के बाद मनुष्य को किसी और ज्ञान की जरूरत नहीं है।

हम ईश्वरीय तत्व के ज्ञान के क्षेत्र में ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते चले जाते हैं: त्यों-त्यों जीवन के सुख के रहस्य ज्यादा अच्छी तरह समझने लग जाते हैं। जीवन के सुख के रहस्य को एक बार जहां तक समझ लेते हैं; उससे आगे ही बढ़ते हैं: पीछे कभी नहीं हटते। इस गुण के कारण ही यह अखण्ड ज्ञान कहलाता है।

हम लोगों ने देखा कि अखण्ड ज्ञान अन्दर का ज्ञान है और यह अनन्त के क्षेत्र का ज्ञान है। बाहर का ज्ञान सीमाओं के क्षेत्र का ज्ञान है। वह मनुष्य, जो जीवन की सीमाओं के क्षेत्र के ज्ञान के आधार पर सुखी बनना चाहता है: वह कभी सुखी नहीं रह सकता। सीमित क्षेत्र के ज्ञान में असीमता का गुण नहीं है; और सीमाओं के क्षेत्र में पहलू अनन्त हैं। अनन्त पहलुओं में जीवन को संवारने के लिए: अनन्त का ज्ञान आवश्यक है। अनन्त के ज्ञान में ही अनन्त की शक्ति है। अब एक साधारण मनुष्य के लिए भी यह समझना आसान होना चाहिए: कि अनन्त के पहलुओं को सीमित शक्ति द्वारा नहीं संवारा जा सकता है।

सृष्टि में दो तरह की शक्तियां हैं-करने की शक्ति और होने की शक्ति।

क्रिया करना हमेशा ही सीमाओं से बंधा होगा: और हम कितना करेंगे; कि हमारे अनन्त पहलू संवर सकें? यदि धीरे-धीरे करनी होने में बदलने लगे: तो शायद अनन्त पहलू संवरने में ज्यादा कठिनाई नहीं होगी।

करना होने में बदले: इसके एक ही माने हैं: और वह यह कि केवल वैसा हो जैसा हम चाहते हैं। यदि हमारी इच्छाओं के विरूद्ध होता रहा: तो हम फिर दु:ख से भर जाएंगे। जिस समय हम अखण्ड शक्ति की बात कर रहे थे, उस समय हमने यह भी देखा था: कि जीवन में ईश्वरीय शक्ति; इच्छा शक्ति या लीला शक्ति के रूप में ही प्रगट होती है। लीला शक्ति और होने की शक्ति एक ही बात है। चाहे कुछ भी हो, जो कुछ भी होता है: कभी कुछ हमारे अपने हाथ पैर द्वारा हो जाता है, कुछ माँ-बाप, पड़ोसियों, सम्बन्धियों या दोस्तों द्वारा हो जाता है।

इस होने और न होने में अन्तर क्या है?

हम अपने जीवन की ओर ध्यान दें: तो देखेंगे कि बहुधा हमें जीवन के अलग-अलग पहलुओं में यह सोचना पड़ता है; कि हम कब क्या करें? सोचने में समय भी लगता है। कभी-कभी बात जल्दी समझ में आ जाती है; और कभी समझ में नहीं आती है। लेकिन ऐसी भी तो बहुत सी क्रियायें होती हैं: जिनके लिए कुछ भी सोचने और समझने की जरूरत नहीं होती। जिन्हें करने के लिए हमारा मन बिना विचार किये आतुर होता है, इसे हम स्वाभाविक क्रिया कहते हैं।

ये स्वाभाविक क्रियाएं आत्म शक्ति की कमी में हमें दु:ख भी देती हैं, इसीलिए हम इनसे कुछ घबराने भी लगे हैं।

सामाजिक वातावरण के स्तर पर इन स्वाभाविक क्रियाओं में अड़चनें भी पैदा होती हैं। इन स्वाभाविक क्रियाओं में, जो भी अड़चनें या दु:ख की ताकत है: वह ईश्वर के ध्यान के नियमित अभ्यास द्वारा धीरे-धीरे कम होने लगती हैं। इनको कम करने का ज्ञान पैदा हो जाता है; इसीलिए यह कम होने लग जाती हैं।

अखण्ड ज्ञान के रास्ते पर मनुष्य चाहे जितनी देर निष्क्रिय (Meditated) रहे: जैसे ही क्रिया में उतरता है, उसकी क्रियाओं में तत्कालीनता होती है।

तत्कालीनता सिर्फ इसलिए है: क्योंकि मन ने ईश्वरीय तत्व को अपने अन्दर पिरोया है। दूसरे शब्दों में जीवन के सुख (Bliss) के रहस्य का ज्ञान मन में समाया हुआ है। उसे कहीं से लेना नहीं है। उसके स्वभाव में सुख की शक्ति भरी हुई है। धीरे-धीरे उसकी स्वाभाविक क्रियाओं में दु:ख देने की शक्ति कम होने लगती है, दूसरे शब्दों में ऐसे मनुष्य को कुछ सोच कर या समझ कर करने की आवश्यकता नहीं रहती, उसे जीवन को सुखी बनाने के लिए कुछ जानना नहीं है। वह जीवन के हर सुख के रहस्य को जानने की अवस्था में है। The man is in a state of knownness. अखण्ड ज्ञान की यही विशेषता है।

जिसके अन्दर अखण्ड ज्ञान उभर आता है: वह हर चीज जानने की अवस्था में है। उसे जानना कुछ भी नहीं है। इसी बात की पुष्टि शास्त्र के इस वाक्य से होती है: कि आत्मज्ञान के बाद किसी ज्ञान की जरूरत नहीं है। ❑

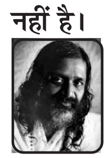

उपासना
(Worship)

✍ महर्षि श्री महेश योगी

अब देखें-चुपचाप बैठ जायें: इसमें भी परिश्रम पड़ेगा। कर्म तो अवश्य होगा ही: विचार आयेंगे। अब विचार न आयें: यह सोचना गलत है। श्वास चल रही है और सारा शरीर का यन्त्र चल रहा है। अब यह प्रयत्न करें कि कर्म न हो, शरीर का यन्त्र न चले तो बड़ी मुश्किल होगी। बड़ा कठिन होगा, काम न करना। उस परिश्रम को हम बचा लें। इस युक्ति से कि जैसा सहज-स्वाभाविक कर्म हो रहा है, मन का स्पन्दन चल रहा है:

उसको अपने स्वभाव से होने दें। अब कर्म को समाप्त करने में लग जायें। श्वास चल रही है उसे धीमी होने दें। मन जो विचार कर रहा है, उसको विचार की सूक्ष्मता में जाने दें।

जो विचार हो रहा है, कर्म हो रहा है, उसको रोकें मत (नहीं तो बड़े जोर का विद्रोह होगा) उस को सूक्ष्मता में जाने दें। जो कर्म प्रकृति से प्रेरित हो रहा है: उसको सूक्ष्मता में जाने दें। यह कर्म से विरत होने का ढंग हुआ।

कर्म न करोगे तो यहां पर रुक जाओगे, लेकिन कर्म से विरत होते-होते बिल्कुल विरत हो जाओ। और यह कर्म से विरत होना सहज स्वभाव के अनुसार होगा, क्योंकि आनन्द की ओर स्पन्दन तीव्र हो रहा है। इससे प्रेरित: **जब वह सूक्ष्म त्रिगुणात्मक होते-होते सच्चिदानन्द रूप हो जाये,** तब यह सहज स्वाभाविक प्रकृति-प्रेरित और प्रकृति-पोषक उपाय है; जिसमें निष्कर्ष की सिद्धि हो जाती है, अर्थात् कर्म नहीं किया। अब यह कर्म न करने का जो फल हुआ, वह यह: कि **तीर खिंच गया, अब तीर छोड़ेंगे तो बड़ी तेजी से जायेगा।** ढाल में गाड़ी खड़ी है, उसे रोके रखने के लिए बड़े जोर से ब्रेक खींचना पड़ता है। बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। ब्रेक छोड़ने पर गाड़ी चल पड़ी, काम अधिक होने लगा। खड़े होने में जो परिश्रम था, वह बच गया और गाड़ी जोर से चल पड़ी। यह युक्ति है: कर्म-योग की। यह कर्म-योग नहीं: कि भगवान् को सोचते रहो, काम करते रहो। मार खाते रहो, भगवान् को जपते रहो। यह अग्राह्य अर्थ है; कर्म-योग का।

रहस्य यह है: कि कर्म-योग के क्षेत्र में जरा भी कोई निष्कर्ष नहीं रह सकता। वह क्रियाशील होगा ही। क्रियाशील होने में जो परिश्रम पड़ रहा है, उसको भी बचाओ। इसलिए भी बच जायेगा: कि ''निस्त्रैगुण्य'' की ओर जाते समय भाव सूक्ष्मता

का अनुभव करते समय अच्छा लगेगा। अपने सहज स्वभाव से उस तरफ चला जायेगा: तो निर्द्वन्द्वो, नित्य सत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान, और बड़ा शक्तिशाली हो जायेगा, तब फिर कर्म करने के योग्य होगा।

पूर्ण परब्रह्म परमात्मा के उपदेश का यह फल होना चाहिए कि मनुष्य को कुछ न करना पड़े और उसके लिए सब हो जाये। नहीं तो उपदेश ही क्या हुआ? यदि हमको परिश्रम करना ही पड़ा, तो वह उपदेश क्या रहा? सर्वशक्तिमान् प्रभु से सम्बन्ध और गीता का उपदेश: यदि उसके बाद भी परेशानी रही। जीवन ऐसा नहीं बना कि कुछ न करें और सब हो जाये; तो फिर वह तो उपदेश ही नहीं रहा। वह भगवान् का गीत: जो भगवद्‌गीता के रूप में स्पन्दित हुआ, वह बेकार ही हो गया। यदि फिर भी मानव के जीवन में यह बात नहीं आयी, सहज स्वभाव से यदि आनन्द नहीं छलका: तो वह स्पन्दित हुआ। ब्रह्म बेकार हो गया, वह स्पन्दित हुआ ही नहीं।

''उपासना'' अर्थात् पास बैठना। सर्व-शक्तिमान् भगवान् के पास बैठना-अपनी अन्तर्रात्मा के पास बैठना। जिसके पास बैठना है: वह पास ही बैठा हुआ है। इसीलिए कहते हैं: केवल ज्ञान कर लेना है, जान लेना है। व्यापक सत्ता के पास कौन नहीं बैठा? सब बैठे हैं; केवल बोध नहीं हुआ। तो उसका थोड़ा अनुभव करते हैं: कि कैसी व्यापक सत्ता है? कैसी सच्चिदानन्दमयिता है? कैसी चेतना है? तो उसमें नित्य प्रतिष्ठित हो ही जायेंगे। जहां उसमें प्रतिष्ठित हुए कि समष्टि की गोद में आ गये: अपने आप सब हो जायेगा। भगवान् का उपदेश है:

''सुखेन ब्रह्म संस्पर्श'' (6.28)-आत्मा को परमात्मा में लगाता हुआ सुखपूर्वक परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति रूप

अनन्त आनन्द का अनुभव करो। सुख से ब्रह्म की अनुभूति होती है। व्यापक सत्ता की अनुभूति सुख से होती है। इसलिए कि वह आनन्द की अनुभूति है और मन आनन्द चाहता ही है। सारे व्यावहारिक प्रपंच के स्पन्दन: केवल उसी तरफ ही होते हैं। सब आनन्द की ओर ही जा रहे हैं।

यह योगेश्वर का उपदेश है। योगियों के ईश्वर वे इसलिए हैं: कि उन्होंने व्यक्ति को बिना कुछ किये, योग के रूप में उठा दिया। योगेश्वर हैं: भगवान् शंकर, जिन्होंने योग के विधान प्रस्तुत किये जिसने ऐसा स्पन्दन फैंक दिया कि जीवन जैसा पूर्ण है: उसकी सहज-स्वाभाविक रूप से सब को उपलब्धि हो जाये।

कहा कि ''निस्त्रैगुण्यो भव''। कोई साधन नहीं बताया: केवल 'निस्त्रैगुण्यो भव' (3.45) सत्व, रजो तथा तमो गुण से ऊपर उठो), कहा। अब इसमें सारे योग की कला का उपदेश हो गया।

जब किसी से कहते हैं कि ''आओ'': तो इसका अर्थ ही है कि जहां हो: वहां खड़े हो जाओ। एक कदम बढ़ाओ फिर दूसरा बढ़ाओ। ऐसे ही कहा कि: **''निस्त्रैगुण्यो भव''** इसका अर्थ है कि प्रकृति के जिस क्षेत्र में त्रिगुणात्मक या स्थूल क्षेत्र में हो, सतोगुण, रजोगुण या तमोगुण में हो; वहां से चलो।

निस्त्रैगुण्य हो जाओ। इसलिए चलना-फिरना कुछ नहीं है। उन्होंने कहा ''भव''-हो जाओ। इसलिए कि सत्ता व्यापक है, जो होना है: स्थिति वही है, जहां हो।

इसीलिए ज्ञान का महत्व है-चाल, बात नहीं बतायी। अभी त्रिगुणात्मक (सत्व, रजो एवं तमो) क्षेत्र में हो, आंख से देख रहे हो, इन्द्रियों से

अनुभव कर रहे हो, स्थूल क्षेत्र में हो। यहां से सूक्ष्म क्षेत्र में आओ, सूक्ष्मातिसूक्ष्म क्षेत्र में आओ, उसको पार करके त्रिगुणातीत अर्थात सत्, चित्त एवं आनन्द क्षेत्र में आओ। ❑

अपने को जानना : ईश्वर साक्षात्कार

✍ **श्री सतनारायण शर्मा**

मो. : 094161-64702

संसार में केवल परमात्मा है। मात्र जो है, वही अनुभव में आता है। और उसी को सत् कहते हैं। जो अनुभव में नहीं आता, वो केवल कल्पना (माना हुआ Assumed) है। अर्थात् वह केवल बुद्धि की उपज है। परमात्मा पूर्ण है। ईशोपनिषिद के अनुसार :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिंद पूर्णात् पूर्णमुद च्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाव शिष्यते॥

भगवान पूर्ण है। पूर्ण होने के कारण, इसे पूर्ण कहा जाता है। और पूर्ण में से पूर्ण लेने के बाद भी, पूर्ण ही रह जाता है। If you subtract purna of the whole from purna, the remainder will also be purna, it will not be zero. As per higher differential calculus in mathematics: infinite minus infinite is also infinete.

परमात्मा का सन्धिविच्छेद है: परम+आत्मा। अर्थात् जीवात्माओं में सर्वश्रेष्ठ है। इसी तरह: भगवान का सन्धिविच्छेद है: भग+वान।

भग = ऐश्वर्य, समृद्धि, Opulances.
वान = रखता है, who possesses.

अत: भगवान का अर्थ है: ज्ञान, सम्पत्ति, शक्ति, सुन्दरता तथा यश इत्यादि: सभी में सम्पूर्ण। भगवान् श्री कृष्ण ने ही उपरोक्त सभी गुणों तथा सोलाह कलाओं में निपुण होने के कारण: श्रीमद्भगवद गीता में

अपने मुखारविन्द से केवल 700 श्लोकों द्वारा चारों वेदों का सार प्रस्तुत किया:

जहां योगेश्वर कृष्ण हैं, पार्थ धनुर्धर साथ।
विजय, नीति और श्री वहां, निश्चय करें निवास॥

'कृष्' : धातु का अर्थ है आकर्षण, अर्थात् खिंचना (Attraction) और **'ण'** : आनन्द (Bliss) का वाचक है।

भगवान् सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। इसलिए वे सब को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इस कारण इन का नाम 'कृष्ण' है।

यहां भगवान को **'कृष्ण'** नाम से सम्बोधित करके अर्जुन यह भाव दिखलाते हैं: कि आप सर्व शक्ति, सर्वज्ञ परमेश्वर हैं। अत: मेरे इस प्रश्न का उत्तर देने में आप ही पूर्ण समर्थ हैं।

'श्रीमद्भगवद गीता' की शिक्षा तो सूर्य है। अगर कुछ लोग चमगादड़ की तरह इसके नूर की चमक को बर्दाश्त (Tolerate) न करके अंधेरे में ही रहना चाहते हैं या जहालत (Ignorance) में ही भटकते रहना इनकी किस्मत में बदा (लिखा) है: तो इस में उन की अपनी ही बदनसीबी समझनी चाहिए। जिसने इस **शिरीं चश्मा** (अमृत रूपी झरना) से एक घूंट भी अमृत पी लिया है: वो फिर इसे कभी नहीं छोड़ सकता। जो मजा इसके पवित्र तथा अमृत भरे उपदेशों को पढ़कर और समझ कर अमल में लाता है: वह शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। यह **अध्यात्म** साधकों के लिए अपने Destination (मन्जिलें मकसूद अर्थात् मोक्ष) तक पहुंचने का एक मार्गदर्शन है। इसी से वे आवागमन से छूट सकते हैं।

श्रीमद्भगवद गीता 15.19 के अनुसार :-

तज मोह पुरुषोत्तम मुझे जो पार्थ ! लेता जान है।
सब भाँति वह सर्वज्ञ हो, भजता मुझे मतिमान् है॥

जो कोई भी मुझे संशय रहित होकर, पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में जानता है: वह सब कुछ जानने वाला है। अतएव हे भरतपुत्र! वह व्यक्ति मेरी पूर्ण भक्ति (Self Realization) में रत होता है। अपूर्ण ज्ञाता परम सत्य के विषय में केवल चिन्तन करता जाता है, जबकि पूर्ण ज्ञाता समय का अपव्य किये बिना, सीधे 'भावातीत' होकर भगवान् की भक्ति (ध्यान) करने लगता है। यदि कोई व्यक्ति पूर्ण भावातीत में रत है, अर्थात् भगवान् की भक्ति करता है, तो यह समझना चाहिए कि उसने सारा वैदिक ज्ञान समझ लिया है।

कहते उसे ही: 'ध्यान', जिस में सर्व दु:ख-वियोग है।
दृढ़ चित्त होकर साधने के योग्य ही: 'ध्यान योग' है॥

यदि कोई 'ध्यान' द्वारा 'भावातीत भक्ति' (Transcendental Meditation) में लगा रहता है : तो उसे भगवान् को जानने के लिए किसी अन्य आध्यात्मिक विधि की आवश्यकता नहीं रहती। भगवान की भक्ति (ध्यान) करने के कारण वह पहले से ही लक्ष्य (मोक्ष) तक पहुंचा रहता है। वह ज्ञान की समस्त प्रारम्भिक विधियों को पार कर चुका होता है। अष्टावक्र गीता (1.4) के अनुसार अष्टावक्र जी राजा जनक को समझाते हैं :-

यदि देह पृथक्कृत्य चिति विश्राम्य तिष्ठसि।
अधुनैव सुखी शान्तः अन्धुमुक्रो भविष्यति॥

''यदि तुम शरीर को पृथक कर के तथा चैतन्य आत्मा में विश्रामपूर्वक स्थित हो: तो तुम अभी ही: सुखी, शान्त तथा बन्धन-मुक्त हो जाओगे।''

सहज ईश्वरीय ध्यान : भौतिक सुख से ईश्वर साक्षात्कार

सहज ध्यान प्रयासरहित है। जैसे ही हम स्थूल जगत से इंद्रियों को हटा लेते हैं: मन सूक्ष्म क्षेत्र की ओर विचरण प्रारम्भ कर देता है। भीतर की दुनिया में एकत्रित अनेक प्रकार के विचारों से गुजरते हुए; धीरे-धीरे मन

को आनन्द (Bliss) की अनुभूति होने लगती है।

बाजार में जाने के लिए बैंक की जमा पूंजी की जरूरत होती है: ठीक उसी प्रकार यदि इस संसार में मन को कुशलतापूर्वक कर्म करने दें, तो उसे ध्यान द्वारा ईश्वरीय क्षेत्र में डुबकी, लगाकर शक्ति को अर्जित करना ही होगा।

ध्यान द्वारा मनुष्य को भौतिक सुखों की प्राप्ति ही नहीं; बल्कि उसे चिरस्थायी आनन्द (Bliss) की भी प्राप्ति होती है।

अभ्यास करते-करते ध्यान (Meditation) द्वारा मनुष्य अपने जीवन को उत्थान की ओर अग्रसर करता है; और उसे स्वयं ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है। ❑

सफाई बहुत जरूरी है

✍ उषा गर्ग, 1645-अर्बन एस्टेट- II, हिसार
मो. : 89012-65520, 01662-246415

सबसे बड़ा दीन दुर्बल वह है: जिसका अपने ऊपर नियंत्रण नहीं। अकसर लोगों को कहते सुना है कि शान्ति चाहिए। परन्तु ध्यान पर बैठने का, या भक्ति करने, या भगवान् का नाम लेने को मन तो बहुत करता है; परन्तु क्या करें? हमारा, हमारे ऊपर ही नियंत्रण नहीं; जिससे हम कुछ समय के लिए बैठ सकें। बातें करते हुए न जाने, समय कैसे भागता है? पता ही नहीं चलता। परन्तु जब ध्यान पर बैठते हैं; तो लगता है: समय चल नहीं रहा, बल्कि ठहर गया है। यह सब दुर्बलता के ही कारण है। फिर आदमी एकाएक भगवान से प्रार्थना करता है:

प्रभु जी वह दिन कब आएंगे, जब हूंगा एकान्त।
ध्यान करूंगा निशदिन और हृदय होवेगा शान्त॥

हम सभी संसार में बहुत इच्छाएं लेकर आते हैं जिनमें शायद

सबसे बड़ी इच्छा; भगवान को पाने की होती है और भगवान से उसका वायदा भी करके आते हैं। परन्तु जीवन का बहुमूल्य समय व्यर्थ की बातों में समाप्त कर देते हैं।

हमारे अन्दर कर्म करने की बहुत अद्भुत शक्तियां हैं। जिन पर हमारा ध्यान ही नहीं जाता। जो पाने के लिए दुनियां में आए; उसे खोकर चले जाते हैं। जीवन में अच्छे-बुरे दिन आते हैं। परन्तु हमें अपना एक नियम जो परमात्मा को मिलने का बनाया होता है; उसको किसी तरह भी छोड़ना नहीं चाहिए।

भगवान है; और उसका प्रगट होगा: इस विश्वास को भी नहीं छोड़ना। पूरी ताकत और धैर्य से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते रहना। लक्ष्य भगवान को पाने का ही होना चाहिए।

जीवन, समुद्र मन्थन का रूप है। जिसमें विष भी है और अमृत भी है। हर आदमी के अन्दर एक ऊर्जा होती है: जिससे वह शुभ भी कर सकता और अशुभ भी। यह भगवान ने आदमी पर छोड़ दिया है:

एक तो सबसे बड़ी समस्या है: कि आदमी खुद को भगवान् मानता है। कि मैं जो कर सकता हूं या जो हो रहा है, वह मैं ही करता हूं। यह उसके जीवन में आगे चलने में बाधा पैदा करती है। अगर आदमी इन पंक्तियों पर ध्यान दे; तो अपने जीने का मजा भी ले लेगा और भगवान् को प्रगट करने में भी समय नहीं लगेगा।

मन, छोड़ दे जग की चिन्ता; उस प्रभु का नाम लिए जा।
वह अपना काम करेगा, तू अपना काम किए जा॥

मेरी आप सब से प्रार्थना है कि दिन में 30-30 मिनट का तीन बार समय

निकाल कर बैठें। समय नहीं मिलता: यह तो केवल एक बहाना है। हां कुछ लोग हो सकता है; बहुत व्यस्त हों। परन्तु ऐसा कुछ नहीं; क्योंकि जो समय दे रहा है, सांस दे रहा है; अर्थात् सबकुछ दे रहा है; उसके लिए समय नहीं तो इस धरती पर आना ही बेकार है। क्योंकि

सृष्टि का नियम है: रोज ज्यादा नहीं तो कम। धूल, मिट्टी; हवा में चलेंगी और उसकी सफाई आवश्यक है। नहीं तो मिट्टी इकट्ठी हो गई, या जमकर पहाड़ बन गई; तो सफाई तो करनी ही पड़ेगी।

पर उस समय परेशानी बहुत होगी। रोज सफाई हो: तो कठिनाई नहीं आती। इसी तरह विचार रूपी कर्मों की परत हम पर भी रोज पड़ती है। अगर हम रोज ध्यान के द्वारा सुबह-शाम सफाई कर लेंगे; तो कोई जिन्दगी में परेशानी आए; इससे बच जाएंगे और आगे का रास्ता भी साफ लेकर जाएंगे। **इसी उम्मीद के साथ बन्द करती हूं;** कि पढ़ने के साथ ही आप ध्यान आरम्भ कर देंगे। बस ध्यान में एकान्त में या जहां जगह मिले; बिस्तर हो, कुर्सी हो या आसन हो; आंखें बन्द करके एक बार भगवान का नाम चाहे राम कहो। बस 30 मिनट के लिए चुप बैठ जाना है; जो होता है, होने देना है। पूरा आराम (Relax): इसी को ध्यान कहते हैं। कुछ सोचना नहीं; बस जो हो रहा है, उसको देखना मात्र है। उसमें लिप्त नहीं होना है। इसी से भगवान की शक्ति मिलनी आरम्भ होगी। दुनियां में काम भी करोगे; तो काम भी अच्छे होंगे। जीने का मजा भी दुगना हो जाएगा।

मन मन्दिर में ग़ाफ़िला, झाड़ू रोज़ लगाया कर

बैठ अकेला दो घड़ी: ईश्वर को तू ध्याया कर। टेक।
मन मन्दिर में ग़ाफ़िला, झाड़ू रोज़ लगाया कर ॥1॥

सोने में तूने रात गुजारी: दिन भर करता पाप रहा,
इसी तरह बर्बाद तू बन्दे, करता अपना आप रहा।
तैयार होकर, ध्यान सत्संग में: नित तू जाया कर॥2॥

बार-बार मानुष तन पाना: बच्चों का कोई खेल नहीं,
जन्म-जन्म के शुभ कर्मों का, जब तक होता मेल नहीं।
नर तन पाने के लिए, उत्तम कर्म कमाया कर॥3॥

पास तेरे जो दुखिया कोई: तूने मौज उड़ाई क्या?
भूखा प्यासा पड़ा पड़ौसी, तूने रोटी खाई क्या?
पहले सबसे पूछकर, फिर तू भोजन किया कर॥4॥

देख दया उस परमेश्वर की: जिसने उत्तम जन्म दिया,
सोच जरा तू मन में प्राणी, कितना है उपकार किया?
प्रात: उठकर हे प्राणी! उसका शुक्र मनाया कर॥5॥

जीवन साधने की चेतनाएं व कक्षाएं

✍ डा० बलदेव राज नाशा

परमात्मा और परमात्मा के अंश में अन्तर केवल उनकी अलग-अलग जागृति के कारण है। शास्त्र में सम्पूर्ण जागृति को सात भागों में बांट दिया। आत्मज्ञान का लक्ष्य होता है - पूर्ण जागृति की प्राप्ति। जागृति में अनुभव करने की शक्ति है : अनुभव को ही ज्ञान कहते हैं। दूसरे शब्दों में जागृति में ही ज्ञान है।

(क) निद्रा सबसे छोटी जागृति है। क्योंकि निद्रा टूटने के बाद हमें निद्रा का ज्ञान हो जाता है, कि हमें कैसी निद्रा आई। यदि यह ज्ञान होना असंभव होता, तो निद्रा जागृति नहीं होती।

(ख) दूसरी जागृति स्वप्न है। जो हमें अनुभव कराती है, कि स्वप्न के समय मन हमारे आन्तरिक क्षेत्र के किन अंकित भावों में भ्रमण कर रहा था।

(ग) तीसरी जागृति हमें इन्द्रिय और बुद्धिजगत में भ्रमणों का ज्ञान कराती है।

(घ) चौथी जागृति हमें, इन्द्रिय और बुद्धिजगत को छोड़कर, मन आन्तरिक क्षेत्र के किन भागों में भ्रमण करता है : इसका ज्ञान कराती है।

(ङ) आन्तरिक क्षेत्र में भ्रमण करके मन योगशक्ति लेकर बाहर आये और इन्द्रियजगत में कर्म करे। इससे योग की शक्ति इन्द्रियों में और इन्द्रियजगत के क्षेत्र में पिरोएगी। इससे एक नई अनुभूति प्राप्त होती है कि हमारी इच्छाओं की पूर्ति थकावट से भर देने वाली, मेहनत से भरे कर्मों द्वारा नहीं होती। बल्कि योगशक्ति इन्द्रियजगत में पिरोने से होगी। **यहां एक नई अनुभूति उत्पन्न होती है और यह पांचवें स्तर की अनुभूति है।**

इन अनुभूतियों के लिये मन को केवल आन्तरिक क्षेत्र में भ्रमण करने का अभ्यास करना है। बढ़ते हुए अभ्यास के साथ, हमें अनुभव होने लगता है, कि मन की समस्त इच्छाओं की पूर्ति, मात्र मन में पिरोयी हुई इच्छाशक्ति है; और इन्द्रियजगत के कर्म नहीं।

(च) **छठी अनुभूति की प्राप्ति तक** मनुष्य अपनी हर इच्छा की पूर्ति कर सकता है, परन्तु केवल समय आने पर।

(छ) यदि वह साधना में आगे बढ़ता ही जायेगा, **तो सातवीं अनुभूति**

यह होगी, कि अब वह अपनी इच्छाओं की तत्काल पूर्ति करने योग्य हो गया है, अर्थात् समय पर भी विजय प्राप्त कर ली है। ऐसा मनुष्य अपने को ब्रह्मस्वरूप अथवा परमात्मास्वरूप मानने के लिए बाध्य हो जाता है।

ऊपर बताये हुए अनुभव तब प्राप्त होते हैं, जब अनुभवशक्ति बढ़ती ही चली जाती है। अनुभवशक्ति को शास्त्रों में चेतना कहा है।इस प्रकार से पूर्णचेतना को सात चेतनाओं में बांट दिया गया है। ❑

ध्यान की प्राथमिक जानकारी

✍ श्री राकेश गर्ग (09896789678)

मन स्वभाव से ही सुख को चाहता है। जहां पर मन को सुख मिलता है: मन अपने आप उसमें लगने लगता है। संसार के भौतिक विषयों के सुख में जब मन लगता है: तो उसे संसारिक विषयों या क्रियाओं का ध्यान कहा जाएगा। जब मन परमात्मा के सुख (आनन्द) में लीन होगा: तब उसे भगवान का ध्यान (Meditation) कहा जाएगा। यही भगवान के ध्यान की परिभाषा होगी।

विधी : हम किसी भी सहज आसन में, एकान्त में आंख बन्द कर, किसी कुचालक पर बैठ जाएं। ईश्वर का नाम केवल एक बार अपने मन में सोच लेना है, वह भी सूक्ष्मता के साथ और फिर अपने मन को छुट्टा छोड़ देना है, अर्थात् बुद्धि से परे हो जाना चाहिए। ऐसा करते ही मन में बुद्धि से परे के विचार आने लग जाएंगे: ऐसा इसलिए, क्योंकि मन अन्दर के विचारों (संस्कारों का क्षेत्र) में भ्रमण करता है। कई बार इस बात को ठीक से नहीं समझा जाता और इसको मन का बाहर की दुनियां में विचार, समझा जाता है।

सत्य यह है: कि ध्यान के समय अपने अन्दर के विचारों में

खो जाना, मन का अन्दर की दुनियां में खोना है; बाहर की दुनिया में खोना नहीं।

जिसके अन्दर जैसे संस्कार होते हैं, उसे वैसे ही विचार ध्यान के समय आते हैं। उभरते हुए संस्कारों के साथ ईश्वरीय शक्ति, जोकि संस्कारों से ढकी है: उभरने लगती है। इस उभरती हुई ईश्वरीय शक्ति में सत्-चित्-आनन्द के तीन गुण हैं। आनन्द के गुण के कारण मन विचारों के क्षेत्र में विचरण करता हुआ बीच-बीच में आनन्द में खोने लगता है। जब मन आनन्द में लीन होता है: तब वह 'मैं' को भी खो देता है। उस समय बाहर की दुनियां का अहसास नहीं रहता। भगवान के आनन्द में मन लगने के कारण: यही भगवान के ध्यान की परिभाषा होगी। क्योंकि यह आनन्द अन्दर से प्रकट होता है, किसी बाहरी पदार्थों या शक्तियों के द्वारा बनाया हुआ नहीं है।

सभी धर्मशास्त्रों में भी कहा गया है: कि परमात्मा को अन्दर खोजें। अत: ध्यान के द्वारा हम अपने अन्दर जाकर परमात्मा को गुणों के रूप में अनुभव कर सकते हैं।

इस शक्ति के द्वारा अपने मन में उठती हुई समस्त सही इच्छाओं की पूर्ति और गलत इच्छाओं की निवृत्ति कर सकते हैं।

ध्यान हमें विश्राम (Relax) की स्थिति में ले जाता है। नये साधकों को ध्यान दिन में 30-30 मिनट, दो से तीन बार कम से कम करना चाहिए। वैसे तो ईश्वर का ध्यान, सभी समय करना अच्छा है: सुबह का ध्यान सर्वश्रेष्ठ है। ज्यादा भरपेट भोजन करके ध्यान पर नहीं बैठना चाहिए। हल्का सुपाच्य भोजन या फलाहार करके बैठ सकते हैं। ध्यान करने के लिए कोई विशेष संयम या दमन की जरूरत नहीं है। अपना सहज अच्छा जीवन व्यतीत करते हुए, अपने सभी दैनिक जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हुए भी ध्यान को साथ-साथ करते रहें, तो सफलता

मिलनी सुनिश्चित है। क्योंकि सफलताओं की ओर ले जाने वाली ईश्वरीय शक्ति, हमारे जीवन में प्रकट होती है: तब हमारा जीवन भारमुक्त होकर आराम से चलने लगता है। ईश्वरीय शक्ति ही होनी की शक्ति है। यह होनी की शक्ति, होनी की क्रियाओं की मदद् से जीवन में जब मदद करती है: तो जीवन बिल्कुल आनन्दमयी हो जाता है। मन अन्तर्मुखी होने लगता है। करनी की जरुरत कम हो जाती है। सन्त तुलसी दास ने कहा है कि-

''पायो परम विश्राम, राम समान प्रभु नांहि कोई''

इस अन्तर्सुख (राम के सुख) को पाकर मैंने परम विश्राम की अवस्था को पा लिया।

जो भजते मुझे भाव से; मैं उन का ही बन जाता।
उनका ही बन जाता: मैं तो उनका ही बन जाता॥

बिना भाव के खूब पुकारें; कभी नहीं मैं आता।
भाव भरी सुन टेर भक्त की: मुझसे रहा नहीं जाता॥

शुद्ध हृदय हो, अनन्य मन से; मेरा ध्यान लगाता।
उन के सारे योग क्षेम को, मैं ही स्वयं चलाता॥

सब कुछ कर दें भेंट, भाव बिन नज़र नहीं उठाता।
करता हूं स्वीकार प्रेम से, जो एक पुष्प भी चढ़ाता॥

मुझे नहीं परवाह वस्त्र की, न ही अन्न धन चाहता।
जो मेरा बन गया हृदय से, उस को मैं अपनाता॥

कैसा भी दोषी हो मेरा? मैं नहीं कभी रिसाता।
जो करता अपराध भक्त का, मुझ को नहीं सुहाता॥

जो मेरी शरणागत आवे; आवागमन मिटाता।
भागीरथ आश्रय ले हरि का, क्यों इत उत मन भटकाता॥

-प्रस्तुति : राकेश गर्ग

भावतीत ध्यान

✍ श्री महेन्द्र सिंह जांगड़ा (9467607109)

जिस क्रिया में मन का विचरण होगा: उसी क्रिया का ध्यान कहलाएगा। बच्चे का मन खेल में है: खेल का ध्यान होगा। मन ईश्वर के क्षेत्र में अन्दर विचरण करेगा: तो यह ईश्वर का ध्यान होगा।

हम ईश्वर के अंश हैं। जीवात्मा ईश्वर का अंश है। ईश्वर हमारे अन्दर है। हमें केवल बाहर-भीतर से चुप होना है। न बाहर से कोई काम, न अन्दर से कोई काम।

एक बार ईश्वर का नाम सोचकर; सुख दायक आसन (Bad Conduct of Electricity) पर बैठ जाना है। मन को आजाद छोड़ देना है। मन में जो बात आए उसे रोकना नहीं है; न हटाना है और न लगाना है। मन में प्रेम अथवा लड़ाई झगड़ा होता है: उसे होने देना है। कुछ भी नहीं करना है। पुरानी बात याद आती है: तो आने दें: रोकें मत। विचार आ नहीं रहे हैं: अपितु निकल रहे हैं। इस तरह 30-30 मिनट दो या तीन बार बैठने से आप के मन की शक्ति, बुद्धि की शक्ति तथा शरीर की शक्ति शीघ्र स्वयंमेव विकसित होगी। यह विद्या अति सुगम एवं सर्वश्रेष्ठ है। इस का तुरन्त फल प्रभाव पड़ता है।

रामायण में जामवन्त जी हनुमान जी को उनकी शक्ति के बारे में समझाते हैं: कि हे हनुमान ! तुम बहुत शक्तिशाली हो तुम शक्ति को भूले बैठे हो। तो हनुमान जी ने अपनी शक्ति

बढ़ा ली।

इसी तरह तुम्हारे पास भी अपार शक्ति है। लेकिन इसका तुम को पता नहीं। यह शक्ति तुम भी ध्यान द्वारा बढ़ा सकते हो। फिर आपके मन, बुद्धि तथा शरीर की शक्ति स्वयं बढ़ जाएगी। इसी शक्ति से संसार में डाक्टर, इंजीनियर, वकील या जज भी बन सकते हो। यह साधना सब से सरल है। ध्यान के समय कुछ नहीं करने से सब कुछ होता है।

ध्यान से स्वास्थ्य एवं रोग मुक्ति

✍ श्री गंगाधर बंसल (09416041346)

शारीरिक स्वास्थ्य के बारे में एक मान्यता चली आ रही है, कि शरीर का निर्माण भोजन द्वारा होता है। लेकिन शरीर चलता भगवान की शक्ति से है। जैसे इंजन बनता तो लोहे से है, लेकिन चलता भाप से है। शरीर सूक्ष्म और स्थूल दो भागों में बंटा हुआ है। सूक्ष्म भाग नसें (VEINS) रक्त की नलियां, और सबसे सूक्ष्म भाग नाड़ी-तंत्र (Nervous System) होता है। नाड़ी तंत्र ईश्वर शक्ति से संचालित होता है। जैसे स्कूटर का इंजन पेट्रोल से संचालित होता है। नाड़ियों द्वारा ईश्वरीय शक्ति शरीर के स्थूल से स्थूलतर भागों में पहुंच कर उन्हें चैतन्यता प्रदान करती है। बिल्कुल ऐसे ही जैसे इंजन में भाप केवल इंजन ही नहीं बल्कि इंजन से जुड़े सभी डिब्बों को भी खींचता है।

यदि नाड़ी-तंत्र को ईश्वरीय शक्ति मिलती रहेगी तो शरीर हमेशा ही ठीक ढंग से चलता रहेगा। जब कोई मकान बनना शुरू होता है, उस समय ईंट-गारा काफी चाहिए, लेकिन जब मकान बन जाता है, तब उसके बाद केवल टूट-फूट (Maintenance) की पूर्ति के लिए ही चाहिए। यदि मकान की नींव मज़बूत है तो मकान गिरेगा नहीं।

मनुष्य बचपन में जो भोजन लेता है, धीरे-धीरे उसके पुट्ठे उभरते हैं और लम्बाई-चौड़ाई भी बढ़ती है। यह कार्य एक निश्चित आयु तक तेज़ी से होता है। बढ़ने की गति धीरे-धीरे कम होती जाती है। फिर एक समय रुक जाती है। लेकिन यदि योग द्वारा मनुष्य नाड़ी तंत्र को भगवान की शक्ति प्रदान करता रहे, जिससे नाड़ी-तंत्र की सफाई होती रहे और उसे चैतन्यता (शक्ति) मिलती रहे तो शरीर का बढ़ना रुकने के बाद भी, उसके शरीर के चलने में कोई बाधा नहीं आएगी।

अपने में रहने वाला ही स्वस्थ : यदि स्वस्थ शब्द का सन्धि-विच्छेद किया जाए तो इसका अर्थ स्पष्ट हो जाएगा। स्व+स्थ=स्वस्थ। स्व का अर्थ है अपना और स्थ का तात्पर्य है स्थित होना। अर्थात् अपने में स्थित रहने वाला ही स्वस्थ है।

स्थित होने वाला मन है। अन्दर की दुनिया मन की अपनी दुनिया है। बाह्य जगत अर्थात् द्वैत जगत मन के लिए विदेश है। इसीलिए इस क्षेत्र में आने के लिए मन को इन्द्रियों की मदद लेनी पड़ती है। उनकी मदद के लिए-बिना, मन बाहर के क्षेत्र में कुछ भी अनुभव नहीं कर सकता। इसीलिए जो भी जागृत अवस्था के अधिकांश समय में द्वैत जगत में अर्थात् क्रियाओं के क्षेत्र में स्थित रहता है, हम कह सकते हैं कि वह मन के अपने (स्व) क्षेत्र में स्थित नहीं है अर्थात् अस्वस्थ है, यानी बीमार है। इसके विपरीत मन सुख-दुख द्वैत की दुनियां छोड़कर अन्दर के अपने क्षेत्र में अर्थात् आनन्द में स्थित है : वह मन स्व में स्थित है, अर्थात् स्वस्थ है।

आनन्द की अलग-अलग अवस्थाएं हैं। ये अवस्थाएं चेतना के विकास पर निर्भर करती हैं। जो व्यक्ति मात्र घोर निद्रा, स्वप्न और

जागृत अवस्था में रहते हैं, उनका जीवन-आनन्द इतना कम रहता है कि वे बर्हिमुखी कहलाते हैं। ऐसे लोगों के समाज में ही यह प्रसिद्ध है कि बीमारी बता के नहीं आती। **'शरीर व्याधी मन्दिरम्'** की उक्ति प्रचलित हो गई है। सच तो यह है कि इस अवस्था के लोग स्वस्थ होते ही नहीं। जब ध्यान के अभ्यास द्वारा चेतना का विकास होने लगता है और मनुष्य ज्यों-ज्यों भावातीत चेतना, ब्रह्म की चेतना, ईश्वरीय चेतना और अद्वैत चेतना की ओर अग्रसर होता है, त्यों-त्यों वह धीरे-धीरे आनन्द में अर्थात् 'स्व' में स्थित होने लगता है और शरीर, बुद्धि, मन सभी स्तरों पर स्वस्थ होता जाता है। स्वास्थ्य शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक तीनों स्तरों पर लक्षित होता है:

1. **शारीरिक स्तर पर केवल वह अस्वस्थ है; जो शारीरिक पीड़ा से कष्ट में है।**

2. **मनुष्य बुद्धि के स्तर पर भी अस्वस्थ होता है।** जब यह बीमारी सीमा पार करने लगती है, तब मनुष्य को पागल कहते हैं। ऐसा सभी जानते हैं, लेकिन जब यह बीमारी छोटे स्तर की होती है, तब मनुष्य हर समय परेशान रहता है। जीवन की परेशानियां बुद्धि के स्तर की बीमारी ही हैं।

बुद्धि में ज्ञान, मात्र ध्यान द्वारा आता है : जिसके जीवन में ध्यान की कमी है, केवल उसी के जीवन में तरह-तरह की परेशानियां आती रहती हैं। इन परेशानियों के आने का एकमात्र कारण यह होता है कि वे अपने में स्थित होने (स्वस्थ होने) के स्थान पर इन्द्रियों के जगत् में ज्यादा स्थित रहते हैं। बुद्धि में रोशनी की कमी में अज्ञानता अवश्य होगी। समाज में तो हर तरह के व्यक्ति मिलते हैं। जो व्यक्ति ध्यान की कमी के कारण कुछ सिद्धांत बना लेते हैं या जीवन के लिए कुछ मार्ग चुन लेते हैं: उनमें ग़लतियां होना स्वाभाविक है। ऐसे

व्यक्तियों को जब ध्यान का रास्ता मिलता है और ध्यान द्वारा उनकी बुद्धि को धीरे-धीरे जब रोशनी मिलने लगती है, तब पिछली त्रुटियां अनुभव होने लगती हैं। जब ये त्रुटियां अनुभव होनी शुरू होती हैं, उस समय धीरे-धीरे उनका अहं भी मिटता हुआ होता है। मिटते हुए अहं की अवस्था में वर्तमान अहं इस बदलती हुई अवस्था में रूकावटें अवश्य डालता है, लेकिन समय बीतने के साथ सारी पिछली त्रुटियां दूर होने लगती हैं। अहं समाप्त हो जाता है और जीवन बदल जाता है।

3. तीसरी मन के स्तर की बीमारियां होती हैं। इन बीमारियों का रूप तरह-तरह के दु:ख होते हैं। जो अच्छा नहीं लगता, उसी को दु:ख कहते हैं। हमें कुछ ख़राब लगता है: यह इस बात का प्रमाण है कि अहं मिटने को बाकी है। यदि जागृत अवस्था के समय आए दिन ऐसी घटनाएं हो रही हैं, जो हमें ख़राब लगती हैं, तो हमें समझ लेना चाहिए कि हमारे जीवन में अहं अभी बहुत मज़बूत है और मिटाने की मात्रा काफी बाकी है।

> **जिस प्रकार रोशनी की कमी को ही अंधेरा कहते हैं, उसी प्रकार बुद्धि में आत्मा के प्रकाश की कमी को ही अहं कहते हैं:**

क्रियाओं के क्षेत्र में मन बुद्धि के ज़्यादा समीप है। इतनी निकटता शरीर से भी नहीं है। इसीलिए बुद्धि में रोशनी की कमी का प्रभाव मन पर अवश्य पड़ता है। बुद्धि का प्रभाव उसी मन पर पड़ना सम्भव है: जिस मन में संस्कारों का घनापन ज़्यादा है और भगवान की रोशनी कम है।

> **ज्यों-ज्यों मन अपने (स्व) में स्थित होने लगता है, या यह कहें कि ईश्वर या आनन्द में स्थित होने लगता है, त्यों-त्यों**

मन पर किसी भी कर्म की गहरी छाप पड़ने की सम्भावना कम होती जाती है। साथ ही साथ बुद्धि में रोशनी बढ़ती जाती है। दूसरे शब्दों में विवेक जागृत होने लग जाता है। इस तरह से यह देखना कितना आसान है कि मन में आनन्द है, तब बुद्धि में भी रोशनी है।

जब बुद्धि में रोशनी की कमी है, तो उसका अर्थ है कि मन में आनन्द की कमी है। मन और बुद्धि में आनन्द और रोशनी साथ-साथ ही बढ़ते और घटते हैं। यह सत्य हमें बुद्धि और मन की निकटता को दर्शाता है। जो स्वस्थ है, वह शक्तिशाली है। जो बीमार है, केवल वही कमज़ोर है। जो अपने (स्व) में स्थित है: वही मन स्वस्थ है, शक्तिशाली है और ऐसे मनुष्यों में ही हरि के प्रताप की कमी नहीं है। जो पूर्ण रूप से स्वस्थ है; उसके अन्दर सब कुछ पाने की शक्ति है। जो पूर्ण रूप से स्वस्थ हैं, वही योग की अवस्था में रहते हुए क्रिया करने में समर्थ हैं। इसीलिए गीता (2.48) भी कहती है, **''योगस्थ कुरू कर्माणी''**। दूसरे शब्दों में केवल अस्वस्थ लोग ही योग की अवस्था में नहीं हैं। स्वास्थ्य की उपरोक्त व्याख्या हमें बताती है कि

शारीरिक स्वास्थ्य की जड़ें तो हमेशा मन में ही रहती हैं। जो अपने मन को स्वस्थ नहीं बना सकता, वह अपने शरीर को भी जड़ से स्वस्थ नहीं कर सकता, लेकिन अध्यात्म की शिक्षा की कमी के कारण आज का समाज उपरोक्त ज्ञान से वंचित है।

कुछ लोग ऐसे मिलते हैं: जो सिद्धांत में प्रयोगात्मक स्तर पर विश्वास करते हैं कि मात्र मन को स्वस्थ कर, अथवा अपने (स्व) में स्थित रहने से अखण्ड स्वास्थ्य की प्राप्ति की सम्भावना है। मन को अपने

में स्थित करने का एक रास्ता ध्यान का अभ्यास है, जिसके विषय में लेखक ने सम्पर्क में आने वालों को बताया है। यदि कोई किसी दूसरे रास्ते द्वारा अपने मन को स्व (मैं) स्थित करने या आनन्द में स्थित करने में सफल हो सकता है, वह उस रास्ते पर चलकर अपने को स्वस्थ बना ले।

जिसे शारीरिक स्तर पर न तो कोई पीड़ा है, न बुद्धि के स्तर पर भय या चिन्ता है और न मन के स्तर पर लोभ या शोक है: ऐसा व्यक्ति निश्चय ही पूर्ण रूप से स्वस्थ है :

जो इन उपलब्धियों को प्राप्त करने के रास्ते पर चल पड़ा है, वही साधक है। इस रास्ते के अलग-अलग स्तरों पर पूर्ण साधक उन स्तरों का सिद्ध भी कहलाएगा। कहने का अर्थ यह है कि जिसने भी भावातीत चेतना की अन्तिम अवस्था प्राप्त कर ली है: निश्चय ही उसका स्वास्थ्य केवल जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति की चेतना वाली अवस्था वाले साधक से अच्छा है। इस अवस्था को एक छोटी सिद्धि कहा जा सकता है। लेकिन जो ब्रह्म (Cosmic) की चेतना की अवस्था में पहुंच गए हैं: उनका हर स्तर का स्वास्थ्य उपरोक्त भावातीत (Transcendental) चेतना के व्यक्ति से ज़्यादा अच्छा होगा और उसे ऊंचे स्तर का सिद्ध कह सकते हैं। इसके ऊपर ईश्वरीय (God) चेतना फिर अद्वैत (Unity) चेतना की अवस्था है। ये काफ़ी उच्च अवस्थाएं हैं और इन उच्च स्तरों के सिद्ध पुरुष समाज में कम मिलते हैं। जीवन के इस लक्ष्य को प्राप्त करने के मार्ग पर वह कहां तक चलने में सफल होगा? यह दूसरी बात है। लेकिन हर मनुष्य की अन्तिम अवस्था तक पहुंचाने में ध्यान का रास्ता अपने आप में सक्षम है।

ध्यान माला

✍ श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-36: अहित छोड़ हित 'मैं' करे, गगन-कुसुम सी बात।
हित है केवल ब्रह्म से, प्रकट धन से तात॥

जब ध्यान के नियमित अभ्यास से भगवान हमारे जीवन में सक्रिय होने लगता है: तब धीरे-धीरे जीवन में उसके गुण: सत्, चित् और आनन्द बढ़ने लगते हैं। अर्थात् बाह्य-चेतना का 'मैं' गलने लगता है। यह 'मैं' (Ego) ही मनुष्य के सभी दु:खों का कारण है; और इसकी उपस्थिति मनुष्य का कल्याण आकाश-कुसुम के समान असंभव है। वास्तव में ब्रह्म की शक्ति ही मनुष्य का कल्याण करती है, जो ध्यान के नियमित से प्राप्त होती है।

दोहा-37 : तनबल, धनबल, बुद्धिबल: जग के हित उपयोग।
अपना हित तो ब्रह्म से; चरम लक्ष्य यह योग॥

ध्यान के अभ्यास से मन ब्रह्म की शक्ति प्राप्त करता है। इससे मनुष्य के जीवन में आन्तरिक आनन्द और विवेक का प्रस्फुटन होता है। ब्रह्म के सत् गुण के प्रभाव से उसका बाह्य जीवन भी संवरने लगता है। ऐसी स्थिति में साधक को अपने कल्याण और जीवन चलाने के लिये बाह्य संसार से किसी भी प्रकार की अपेक्ष नहीं रह जाती: यहां तक कि साधना से प्राप्त शक्तियां उसे उसकी आवश्यकता से अधिक देने लगती हैं। तब स्वाभाविक रूप से उसके शारीरिक बल, भौतिक सम्पन्नता और बौद्धिक क्षमता का उपयोग संसार के अन्य प्राणियों के कल्याण के लिये स्वत: होने लगता है। योग की यह एक अति उच्च अवस्था है। गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को योगी होने के लिये ही कहा है-**'तस्मात योगी भवार्जुन:।'** ❑

नोट :- 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 20/- (बीस) रुपये मनी आर्डर अथवा कैश : अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

–Sh. Rakesh Garg, Keshav Lace Emporium,
Shop No. 91, Lajpat Rai (Rehri) Market, Hisar-125001
Mobile : 098967-89678

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार में पारिवारिक ध्यान सत्संग शाम को 4 बजे से 6 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

-सुरेश कुमार गुप्ता
1618, अर्बन एस्टेट-II,
पुष्पा कम्पलैक्स के पीछे, हिसार-125005

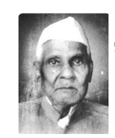

PRINTED MATTER